मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-12, अङ्क-6 जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व (वि.नि.सं. 2539) जून 2013

जय समयसार जय समयसार

जय समयसार, जय समयसार।

तू है निर्मल ज्ञान हमारा, तू है गुण छविमान हमारा,

तू है स्वर्ण विमान हमारा, मूर्तिमान उपकार।

तू एकान्त नशानेवाला, अनेकान्त दरशानेवाला,

जग का ध्वान्त मिटानेवाला, नाशक मिथ्याचार॥ जय०॥

तुझमें विमलाभास भरा है, तुझमें ज्ञान विकास भरा है,

तुझमें धर्मप्रकाश भरा है, तू है गुण भण्डार॥ जय०॥

तुझसे है जग में उजियारा तू पवित्र है ज्ञान निराला,

तू है गुण मण्डित मणिमाला, तू जग का शृंगार॥ जय०॥

तू है तीर्थङ्कर की वाणी, पीकर तेरा निर्मल पानी,

बनता है जग केवलज्ञानी, तू है ज्ञानागार॥ जय०॥

रक्षक तू है जननी हमारी, हम हैं तेरे कृपा भिखारी,

तन-मन-धन तुझ पे बहिलारी, वरद स्वपाणि प्रसार॥ जय०॥

माँ अज्ञान हमारा हर दे, सुन्दर शुचिकर शुचितर वर दे

हर दे सकल विकार....॥ जय०॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

प्रधान सम्पादक
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार
स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
श्री लक्ष्मीचन्द बी. शाह, लन्दन
श्री पवन जैन, अलीगढ़
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग

श्रीमती सूर्याबेन

धर्मपत्नी

महेन्द्र मेघजी शाह

(मनुभाई)

लन्दन।

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व

क्या / कहाँ

जीवादि सात तत्त्वों का.... 3
द्रव्यश्रुत : संक्षिप्त परिचय 9
रङ्गभूमि में : सात तत्त्व 21
स्वभावालम्बी ज्ञान की 25
पण्डितजी की डायरी से 30
समाचार-दर्शन 31

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा ***मङ्गलायतन*** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने से....

(नियमसार गाथा 38 पर पूज्य गुरुदेवश्री का 30-01-1978 का प्रवचन)

नियमसार, अधिकार दूसरा। जीव-अजीव दो अधिकार आ गये हैं। (अब) **शुद्धभाव अधिकार।** यह शुद्धभाव अर्थात्? जो पुण्य और पाप के अशुद्धभाव हैं, उनसे रहित जो शुद्धभाव, पर्याय नहीं; यह शुद्धभाव त्रिकाल की बात है। शुभ और अशुभभाव जो अशुद्ध हैं, इस अपेक्षा से आत्मा की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वह शुद्ध है परन्तु वह शुद्ध यह भाव नहीं, वह यह शुद्धभाव अधिकार नहीं। यह शुद्धभाव अधिकार तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को कहते हैं। समझ में आया? वह शुद्धभाव पर्याय है। सम्यग्दर्शन निश्चय; व्यवहारनय तो अशुद्ध में गया। निश्चय सम्यग्दर्शन, (तो पर्याय है।) आत्मा का ध्रुवस्वभाव जो त्रिकाली, उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो निर्मल पर्याय-मोक्ष का मार्ग (प्रगट हुआ), वह शुद्धपर्याय यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो शुद्धपर्याय भी हेय है, आश्रय करनेयोग्य नहीं-ऐसा कहना है। आहा...हा...!

निमित्त तो हेय है, निमित्त की ओर का शुभ-अशुभभाव भी हेय है परन्तु पर्याय में जो द्रव्य के आश्रय से शुद्ध मोक्ष का मार्ग उत्पन्न होता है— उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव (उत्पन्न होता है); उदयभाव तो अशुद्ध में गया। अब उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव जो **सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः** इस निर्मल पर्याय को भी यहाँ हेय में डालते हैं। वह अधिकार नहीं, यहाँ तो शुद्धभाव का अधिकार, त्रिकाली वस्तु है, वह शुद्धभाव अधिकार है।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो॥३८॥
है हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥

टीका : यह हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। छोड़नेयोग्य क्या है? आश्रय करनेयोग्य क्या है? और उपादेय-आश्रय करनेयोग्य कौन है? उसका यहाँ कथन है। सूक्ष्म बात है भगवान! आ...हा...! **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** इसकी व्याख्या। जीवादि सात तत्त्व... वह कौन जीव? पर्याय / व्यवहार जीव। पुण्य-पाप का भाव तो उदयभाव में अशुद्ध है, वह बहिरतत्त्व है, परन्तु अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, शुद्ध आनन्द का स्वाद आया, वह पर्याय भी जीव की बहिरतत्त्व है, वह जीवरूप पर्याय बहिरतत्त्व है। त्रिकाली आत्मा अन्त:तत्त्व है। आहा...हा...! समझ में आया?

जीवादि सात तत्त्वों का समूह... जीव की पर्याय यहाँ जीव में लेना। पर्याय फिर उदय की हो या उपशम या क्षायिक या क्षयोपशम की हो; वह बहिरतत्त्व में जाती है। आहा...हा...! वह **जीवादि सात तत्त्वों....** संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये भी बहिरतत्त्व में जाते हैं। आहा...हा...! क्योंकि इनका आश्रय करनेयोग्य नहीं है; आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली भाव है। जिससे मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है—ऐसा त्रिकाली भाव, वह एक उपादेय है। आहा...हा...! समझ में आया? पाँच भाव है न पाँच भाव! उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, पारिणामिक। अत: वह पारिणामिकभावरूप जो त्रिकाली ध्रुव; उसके अतिरिक्त उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक आदि जो चार भाव हैं, वे जीवादि बहिरतत्त्व में जाते हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है भगवान! आहा...हा...!

तेरा रूप तो भगवान है न, नाथ! आहा...हा...! परमात्मस्वरूप है

घट घट अन्तर जिन वसै, घट घट अन्तर जैन
मत मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।

यह लाईन समयसार नाटक की है। 'घट घट अन्तर जिन वसै...' आत्मा त्रिकाली जिनस्वरूप ही है। आहा...हा...! वीतराग अकषायमूर्ति प्रभु है; उसे परमपारिणामिकभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, ध्रुवभाव कहो, सामान्यभाव कहो, एकरूप भाव कहो; उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है।

उससे ये जीवादि बाह्य तत्त्व हेय-भिन्न हैं। आहा...हा...! निमित्त तो हेय है ही क्योंकि परद्रव्य है; परद्रव्य तो अपने को कभी स्पर्श नहीं करता और अपनी पर्याय, परद्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करती, परन्तु इसे जो स्पर्श करती है, वह पर्याय; पर्याय में रागादिभाव विकार, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह अशुद्धभाव में जाता है। वह भी बहिरतत्त्व है और स्वभाव के आश्रय से भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु 'घट घट अन्तर जिन वसै, घट घट अन्तर जैन....' अन्तर में जो स्वरूप पूर्ण है, उसका अनुभव हुआ, उसके आश्रय से वीतराग पर्याय उत्पन्न हुई, वह जैनपना, परन्तु वह जैनपना भी पर्याय है, उसे यहाँ जीवादि तत्त्वों में हेय कहा गया है। आहा..हा...! समझ में आया?

जीवादि... अर्थात् उसकी पर्याय—उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक या उदय, यह जीव पर्याय। अजीव शरीरादि, कर्म आदि; पुण्य-पाप-आस्रव; बन्ध, राग में रुकना; और संवर-निर्जरा-मोक्ष, इन सभी जीवादि तत्त्वों में यहाँ पुण्य-पाप को भिन्न नहीं कहा, परन्तु आस्रव में डाल दिया है। इसलिए **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने से....** आहा...हा...! वह तो परद्रव्य है, स्वद्रव्य नहीं। आहा..हा...! यह कथनी तो देखो! वीतरागी सन्त के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है। यह अन्तर की बात है। समझ में आया? यहाँ तो अभी व्यवहाररत्नत्रय-सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा के अनुभव बिना व्रत और तप साधन हैं और उनसे साध्य निश्चय होता है (—ऐसा लोग मानते हैं)। शास्त्र में भिन्न साध्य-साधन आता है, वह तो समझाने की चीज कही, निमित्त का ज्ञान कराया कि वहाँ कौन सा भाव था? अरे... प्रभु!

यहाँ तो कहते हैं कि क्षायिक समकित हो और केवलज्ञान हो, मोक्षतत्त्व की पर्याय जो क्षायिकभावरूप हो, वह भी जीवादि तत्त्व—परद्रव्य में जाती है। आहा...हा...! **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** आहा...हा...! अन्दर बहुत जगह आता है। 105 पृष्ठ पर है, 199 में है। चार-पाँच जगह है। वह तो परद्रव्य है। आहा...हा...! क्योंकि जिसमें से नयी पर्याय उत्पन्न न हो... जैसे परद्रव्य में से अपनी वीतरागी

निर्मलपर्याय प्रगट नहीं होती; उसी प्रकार पर्याय में से निर्मलपर्याय प्रगट नहीं होती तो उस पर्याय को यहाँ परद्रव्य कहा गया है। क्या कहते हैं?

फिर से, जैसे अपने द्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य से अपनी कोई निर्मलपर्याय उत्पन्न नहीं होती क्योंकि परद्रव्य भिन्न है; वैसे ही अपनी निर्मलपर्याय में से नयी निर्मलपर्याय उसमें से उत्पन्न नहीं होती और उसके आश्रय से उत्पन्न नहीं होती। आहा...हा...! समझ में आया? जो मोक्षमार्ग की पर्याय है, निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय, निर्विकल्प वीतरागी पर्याय और उसका उपेय (फल)। यह तो उपाय, उपेय-मोक्ष भी पर्याय है। वह भी क्षायिकभाव की (पर्याय है) पञ्चम पारिणामिकभाव द्रव्य की, क्षायिकभाव की पर्याय है, तो उस पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहा है।

श्रोता : ऐसा सूक्ष्म समझना...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसके बिना यह तत्त्व पकड़ में नहीं आयेगा भगवान! तू अन्दर में कैसा है? वह तो आनन्द का दल है, अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आहा...हा...! सबेरे नहीं कहा था? शकरकन्द की बात कही थी न? सबेरे कहा था? आज नहीं, कल कहा था। वह शकरकन्द नहीं होता? हमारे (गुजराती में) शकरिया कहते हैं। ऊपर की जो लाल छाल है, उसके अतिरिक्त देखो तो शकरकन्द है। शकरकन्द, अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड है। लाल छाल होती है न? यह वैष्णव शिवरात्रि में बहुत खाते हैं। है तो कन्दमूल, उसमें अनन्त जीव हैं परन्तु यहाँ कहते हैं कि लाल छाल, ऊपर की छाल, उसे नहीं देखो तो पूरा दल है, वह तो शक्कर का कन्द है, शक्कर की मिठास का पिण्ड है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा (में) पुण्य और पाप, दया और दान के विकल्प हैं, वह तो ऊपर की छाल है, छाल है। उस छाल के नीचे देखो तो, जैसे (शक्करकन्द) शक्कर का पिण्ड है, वैसे यह अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। आहा...हा...! यह अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, वह स्वद्रव्य है। उसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी पर्याय हो, क्षायिकभाव

की पर्याय हो, चौथे-पाँचवें-छठवें गुणस्थान में क्षायिक समकित हो, उसे तो यहाँ बहिरतत्त्व में डाला है, क्योंकि उसका आश्रय करने से लाभ नहीं होता। वह है तो लाभरूप परन्तु उसका आश्रय करने से, वह पर्याय है; इसलिए विकल्प उत्पन्न होते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** पर्याय का समूह, पर्याय का समूह वह पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष—यह पर्याय का समूह **परद्रव्य होने के कारण....** आहा...हा...! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि में यह बात आयी है, इन्द्र और गणधरों के समक्ष (यह बात आयी है) सभा में तो इन्द्र एकावतारी बैठे हैं, शकेन्द्र एकावतारी-एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। सौधर्म एकावतारी हैं, अन्तिम भव में मनुष्य होकर मोक्ष में जायेंगे, उनकी पत्नी इन्द्राणी भी एक भवतारी है, सभा में वे थे और गणधर सन्त थे, उस सभा में भगवान की वाणी में यह आया है। आहा...हा...!

प्रभु! तू कौन है? तू पर्याय जितना है? आहा...! तू राग जितना है? आहा...हा...! और पर्याय को तो व्यवहार आत्मा कहा जाता है। आहा...हा...! जो (समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में कहा **ववहारोऽभूदत्थो** पर्यायमात्र अभूतार्थ कही है, झूठी कही है। झूठी की अपेक्षा क्या? मुख्य ध्रुव की दृष्टि कराने के लिये मुख्य को निश्चय कहा और पर्याय है तो सही परन्तु गौण करके, व्यवहार कहकर 'नहीं'-ऐसा कहा है। वह नहीं, ऐसा नहीं है; गौण करके, व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा है। आहा...हा...! यह बात यहाँ ली है कि जितनी व्यवहार अभूतार्थ पर्याय है, वह सब परद्रव्य है। आहा...हा...!

परद्रव्य होने के कारण... कारण दिया, क्यों उपादेय नहीं? पाठ में तो हेय (शब्द है), पाठ में हेय है **बहित्च्यं हेयं।** परन्तु अर्थ ऐसा किया कि जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है, ऐसा लिया। पाठ में हेय है। समझ में आया? परन्तु हेय है, वह

इसका हेतु बताना था कि वह उपादेय नहीं है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है; इस कारण हेय का अर्थ 'उपादेय नहीं'—ऐसा कहा। आहा...हा...! समझ में आया? यहाँ तो क्षायिक निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कहा है। आहा...हा...! क्योंकि यह शुद्धभाव अधिकार है न? त्रिकाली शुद्ध का पिण्ड जो प्रभु है, वह स्वद्रव्य है; इस अपेक्षा से पर्यायमात्र को बहिरतत्त्व कहकर परद्रव्य कहा है। आहा...हा...! ऐसा है प्रभु! अरे...रे...! इसमें किसके साथ चर्चा करना, बात करना?

लोग यह समझते नहीं और फिर मानते हैं कि हमारा (सोनगढ़ का) एकान्त है। कहो बापू! तुम भी भगवान हो। अन्दर में तो भगवान हो भाई! अन्दर तो भगवानस्वरूप हो। यह तो पर्याय में तेरी भूल है और वह भी एक समय की भूल है, एक सेकेण्ड का असंख्यातवाँ भाग, उसमें एक समय की भूल। भगवान त्रिकाली तो निर्भूल भगवानस्वरूप है, यह शुद्धभाव (कहा वह)। आहा...हा...!

श्रोता : भूल का समय थोड़ा परन्तु जोर कितना?

पूज्य गुरुदेवश्री : जोर तो एक समय ही रहता है। संसार की पर्याय एक समय ही रहती है, दूसरे समय में दूसरी; भले ही ऐसी की ऐसी हो परन्तु दूसरी होती है। अरे! केवलज्ञान भी एक समय में जो उत्पन्न होता है, वह दूसरे समय में वह नहीं होता। वैसा हो परन्तु वह नहीं। आहा...हा...! इस कारण पर्याय को बहिरतत्त्व कहा है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े, प्रभु! परन्तु क्या करें? मार्ग तो जो है, वह है। समझ में न आवे, इसलिए न चले, इससे कहीं मार्ग दूसरा हो जाता है? यह तो अनन्त केवली, अनन्त तीर्थङ्कर (कहते हैं)। त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह नहीं होता। तीनों काल त्रिकाल है तो त्रिकाल वस्तु ज्ञेय है न? अत: त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। अनादि से सर्वज्ञ है, अनादि से त्रिकाल है। समझ में आया? त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। आहा...हा...!

[गुरु कहान दृष्टि महान, (गुजराती) भाग-5 में से साभार]

ज्ञानपूर्व श्रुतपञ्चमी के अवसर पर

द्रव्यश्रुत : संक्षिप्त परिचय

तीर्थङ्कर परमात्मा की निरक्षरी ॐकारमयी दिव्यध्वनि के आधार से गणधरदेव, द्वादशाङ्ग की रचना करते हैं। ज्ञानपर्व श्रुतपञ्चमी के पावन अवसर पर यहाँ द्रव्यश्रुत का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। इसी परम्परा में हमारे आचार्य एवं मुनिभगवन्तों तथा ज्ञानियों ने जैन शास्त्रों की रचना करके जिनवाणी पावन प्रवाह को जीवन्त रखा है, जो हमें आत्महित का सत्पथ दर्शाने के लिये समर्थ है। -*सम्पादक*

ज्ञान—जीव का विशेष गुण, वह ज्ञान है अथवा जाननमात्र, वह ज्ञान है।

ज्ञान के आठ भेद— (1) केवलज्ञान; (2) मन:पर्ययज्ञान; (3) अवधिज्ञान; (4) विभङ्ग ज्ञान (कुअवधिज्ञान); (5) श्रुतज्ञान; (6) कुश्रुतज्ञान; (7) मतिज्ञान; (8) कुमतिज्ञान

श्रुतज्ञान—अवग्रह से लेकर धारणा पर्यन्त मतिज्ञान द्वारा जानने में आये हुए अर्थ के निमित्त से अन्य अर्थ का ज्ञान होना, वह श्रुतज्ञान है। ★ जो परोक्षरूप से सर्व वस्तुओं को अनेकान्तरूप दर्शाता है। ★ संशय, विपर्यय आदि से रहित ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। ★ श्रुतज्ञान, मतिज्ञानपूर्वक होता है। ★ आत्मा की सिद्धि के लिये मति-श्रुतज्ञान नियत कारण है।

श्रुतज्ञान के भेद—द्रव्यश्रुत और भावश्रुत

द्रव्यश्रुत और भावश्रुत—आचाराङ्ग आदि बारह अङ्ग, उत्पाद पूर्वादि चौदह पूर्व और सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णकस्वरूप **द्रव्यश्रुत** है और उसके निमित्त से उत्पन्न होनेवाला निर्विकार स्व-अनुभवरूप ज्ञान, वह **भावश्रुत** जानना।

द्रव्यश्रुत के भेद—अङ्ग प्रविष्ट और अङ्ग बाह्य।

अङ्ग की व्याख्या—तीनों ही काल के समस्त द्रव्य अथवा पर्यायों को 'अङ्गति' अर्थात् प्राप्त होता है अथवा व्याप्त करता है, वह अङ्ग है।

अथवा समस्त श्रुत के और उसके आचार आदिरूप अवयव को अङ्ग कहते हैं।

अङ्ग प्रविष्ट— आचाराङ्ग आदि बारह भेदसहित है, वह अङ्ग प्रविष्ट है।

अङ्ग बाह्य—गणधरदेव के शिष्य-प्रशिष्य द्वारा अल्पायु-बुद्धि-बलवाले जीवों को उपदेशार्थ अङ्गों के आधार से रचित संक्षिप्त ग्रन्थ, अङ्ग बाह्य है।

बारह अङ्ग की रचना—तीर्थङ्करदेव की ॐकार ध्वनि सुनते हुए समवसरण में गणधरदेव को अन्तर्मुहूर्त में बारह अङ्गरूप द्रव्यश्रुतज्ञान प्रगट होता है। गणधरदेव बीज, कोष्ठ, पदानुसारी, तथा समभिन्नश्रोत्रत्व बुद्धि-ऋद्धिधारी होने से बारह अङ्ग का ज्ञान शक्य बनता है।

अक्षर—जितने अक्षर हैं, उतना ही श्रुतज्ञान है क्योंकि एक-एक अक्षर से एक-एक श्रुतज्ञान की उत्पत्ति होती है। ★ एक मात्रावाले वर्ण **ह्रस्व** कहलाते हैं। ★ दो मात्रावाले वर्ण **दीर्घ** कहलाते हैं। ★ तीन मात्रावाले वर्ण **क्लत** कहलाते हैं। और ★ अर्ध मात्रावाले वर्ण **व्यञ्जन** कहलाते हैं।

व्यञ्जन-33 हैं, स्वर-9, ह्रस्व-9, दीर्घ-8, क्लत—ऐसे मिलकर 27 हैं, और अयोगवाह अं, अः, × क तथा × 5 ऐसे चार हैं। कुल 64 होते हैं।

द्रव्यश्रुत—अङ्गप्रविष्ट—**बारह अङ्ग—** (1) आचाराङ्ग; (2) सूत्र कृताङ्ग; (3) स्थानाङ्ग; (4) समवाय अङ्ग; (5) व्याख्या प्रज्ञप्तिअङ्ग; (6) ज्ञातृधर्मकथाअङ्ग; (7) उपासकाध्ययन अङ्ग; (8) अन्तकृतदशाङ्ग अङ्ग; (9) अनुत्तरोपपादक अङ्ग; (10) प्रश्नव्याकरण अङ्ग; (11) विपाक-सूत्र अङ्ग; (12) द्रष्टिवाद अङ्ग।

द्रव्यश्रुत—अङ्गबाह्यश्रुत—**चौदह प्रकीर्णक—**(1) सामायिक; (2) चतुर्विंशतिस्तव; (3) वन्दना; (4) प्रतिक्रमण; (5) वैनयिक; (6) कृतिकर्म; (7) दशवैकालिक; (8) उत्तराध्ययन; (9) कल्पव्यवहार; (10) कल्पाकल्प; (11) महाकल्प; (12) पुण्डरिक; (13) महापुण्डरिक; (14) निषिध्धिका / निसितिका।

बारह अङ्ग - उनके विषय और पद संख्या

क्र.	नाम	विषय	पद संख्या
1	आचाराङ्ग	इसमें मुनिवरों के आचारों का निरूपण है।	18,000
2	सूत्रकृताङ्ग	ज्ञान के विनय आदि अथवा धर्म क्रिया में स्व-मत पर-मत की क्रिया के विशेषों का निरूपण है।	36,000
3	स्थानाङ्ग	पदार्थों के एक आदि स्थानों का निरूपण है; जैसे कि जीव सामान्यरूप से एक प्रकार, विशेषरूप से दो प्रकार, तीन प्रकार इत्यादि ऐसे कहे हैं।	42,000
4	समवायअङ्ग	जीवादि छह द्रव्यों के द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि द्वारा वर्णन है।	1,64,000
5	व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग	जीव के अस्ति-नास्ति आदि 60,000 प्रश्न गणधर देवों ने तीर्थङ्कर के समीप किये, उनका वर्णन है।	2,28,000
6	ज्ञातृधर्मकथा अङ्ग	तीर्थङ्करों की धर्म कथा, जीवादि पदार्थों के स्वभाव का वर्णन तथा गणधर के प्रश्नों के उत्तर का वर्णन है।	5,56,000
7	उपासकाध्ययन अङ्ग	ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावक के आचार का वर्णन है।	11,70,000
8	अन्तकृतदशाङ्ग अङ्ग	एक-एक तीर्थङ्कर के काल में दस-दस अन्तकृत केवली हुए, उनका वर्णन है।	23,28,000

क्र.	नाम	विषय	पद संख्या
9	अनुत्तरोपपादक अङ्ग	एक-एक तीर्थङ्कर के काल में दस-दस महामुनि घोर उपसर्ग सहन करके अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए उसका वर्णन है।	92,44,000
10	प्रश्नव्याकरण अङ्ग	इसमें भूतकाल और भविष्यकाल सम्बन्धी शुभ-अशुभ का कोई प्रश्न करे, उसके यथार्थ उत्तर कहने के उपाय का वर्णन है तथा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी, निर्वेदनी - इन चार कथाओं का भी इस अङ्ग में वर्णन है।	93,16,000
11	विपाकसूत्र अङ्ग	कर्म के उदय के तीव्र मन्द अनुभाग का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षासहित वर्णन है।	18400000
12	द्रष्टिवाद अङ्ग	इस अङ्ग में 180 क्रियावाद, 84 अक्रियावाद,67 अज्ञानिकवाद, और 32 वैनयनिकवाद ऐसे मिथ्या-दर्शन सम्बन्धी 363 कुवादों का वर्णन है और उनका खण्डन करने में पाँच अधिकार है। 1. परिकर्म, 2. सूत्र, 3. प्रथमानुयोग, 4. पूर्वगत (चौदहपूर्व) और 5. चूलिका	1,08,68,56,005
		बारह अङ्ग के कुल पद	112,83,58,005
एक सौ बारह करोड़, तिरासी लाख, अट्ठावन हजार, पाँच			

बारहवें दृष्टिवाद अङ्ग के पाँच अधिकार

पहला अधिकार - परिकर्म

परिकर्म में गणित के करणसूत्र हैं, इसके पाँच भेद हैं।

क्र.	नाम	विषय	पद संख्या
1	चन्द्रप्रज्ञप्ति	चन्द्रमा के गमनादिक, परिवार, वृद्धि-हानि ग्रह आदि का वर्णन है।	36,05,000
2	सूर्यप्रज्ञप्ति	सूर्य के ऋद्धि, परिवार, गमन आदि का वर्णन है।	5,03,000
3	जम्बूद्वीप	जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरुगिरिक्षेत्र, कुलाचल प्रज्ञप्ति आदि का वर्णन है।	3,25,000
4	द्वीपसागर -प्रज्ञप्ति	द्वीप-सागर का स्वरूप तथा वहाँ स्थित ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवों के आवास तथा वहाँ स्थित जिनमन्दिरों का वर्णन है।	52,36,000
5	व्याख्याप्रज्ञप्ति	जीव-अजीव पदार्थों के प्रमाण का वर्णन है।	84,36,000
		परिकर्म के कुल पद	1,81,05,000
एक करोड़, इक्यासी लाख, पाँच हजार			

दूसरा अधिकार : **सूत्र** — इसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी 363 कुवादों का पूर्व पक्ष लेकर उन्हें जीव पदार्थ पर लगाना - आदि का वर्णन है।

इसके पद (अट्ठासी लाख) 88,00, 000

तीसरा अधिकार : **प्रथमानुयोग** — इसमें प्रथम जीव का उपदेश योग्य तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि त्रेसठ शलाका पुरुषों का वर्णन है।

इसके पद (पाँच हजार) 5,000

चौथा अधिकार : **पूर्वगत** — इसके चौदह भेद हैं, जो चौदह पूर्व के रूप में प्रसिद्ध है।

क्रम	पूर्व	विषय	वस्तु अधि -कार	प्रत्येक अधिकार में 20 पाहुड़ / 24 अनुयोग द्वार	कुल पद की संख्या
1	उत्पाद पूर्व	इसमें जीव आदि वस्तुओं के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आदि अनेक धर्मों की अपेक्षा से भेद-वर्णन है।	10	200/ 4800	1,00,00,000
2	अग्रायणी पूर्व	इसमें सात सौ सुनय, दुर्नय और षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नौ पदार्थों का वर्णन है।	14	280/6720	96,00,000
3	वीर्यानुवाद पूर्व	इसमें छह द्रव्यों की शक्तिरूप वीर्य का वर्णन है।	8	160/3840	70,00,000
4	अस्ति-नास्ति प्रवाद पूर्व	इसमें जीवादिक वस्तु का स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से अस्ति; पररूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से नास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि-निषेध करके सप्तभङ्ग द्वारा कथञ्चित् विरोध मिटानेरूप मुख्य-गौण करके वर्णन है।	18	360/8640	60,00,000

क्रम	पूर्व	विषय	वस्तु अधि -कार	प्रत्येक अधिकार में 20 पाहुड़ / 24 अनुयोग द्वार	कुल पद की संख्या
5	ज्ञानप्रवाद पूर्व	इसमें ज्ञान के भेदों का स्वरूप, संख्या, विषय, फल आदि का वर्णन है।	12	240/5760	99,99,999
6	सत्यप्रवाद पूर्व	इसमें सत्य, असत्य आदि वचनों की अनेक प्रकार की प्रवृत्ति का वर्णन है।	12	240/5760	1,00,00,006
7	आत्मप्रवाद पूर्व	इसमें आत्मा (जीव) पदार्थ के कर्ता-भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चय-व्यवहारनय की अपेक्षा से वर्णन है।	16	320/7680	26,00,00,000
8	कर्मप्रवाद पूर्व	इसमें ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के बन्ध, सत्त्व, उदय, उदीरणा, आदि का तथा क्रियारूप कर्मों का वर्णन है।	20	400/9600	1,80,00,000
9	प्रत्याख्यान पूर्व	इसमें पाप के त्याग का अनेक प्रकार से वर्णन है।	30	600/14400	84,00,000

क्रम	पूर्व	विषय	वस्तु अधि -कार	प्रत्येक अधिकार में 20 पाहुड़ / 24 अनुयोग द्वार	कुल पद की संख्या
10	विद्यानुवाद पूर्व	इसमें सात सौ क्षुद्रविद्या, और पाँच सौ महाविद्याओं का स्वरूप, साधन, मन्त्रादिक और सिद्ध हुए उनके फल का वर्णन है तथा अष्टाङ्ग निमित्त ज्ञान का वर्णन है।	15	300/7200	1,10,00,000
11	कल्याणवाद पूर्व	इसमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि के गर्भ कल्याणक के उत्सव तथा उनका कारण षोडशभावना आदि, तपश्चरण आदि, तथा चन्द्रमा, सूर्यादि के गमन विशेष आदि का वर्णन है।	10	200/4800	26,00,00,000
12	प्राणवाद पूर्व	इसमें आठ प्रकार के वैदक तथा भूतादिक की व्याधि को दूर करने के मन्त्रादिक तथा विष दूर करने के उपाय और स्वरोदय आदि का वर्णन है।	10	200/4800	13,00,00,000

क्रम	पूर्व	विषय	वस्तु अधि -कार	प्रत्येक अधिकार में 20 पाहुड़ / 24 अनुयोग द्वार	कुल पद की संख्या
13	क्रियाविशाल पूर्व	इसमें सङ्गीतशास्त्र, छन्द, अलङ्कारादिक तथा चौसठ कला गर्भाधान आदि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शनादि एक सौ आठ क्रिया, देववन्दनादि पच्चीसक्रिया, नित्यनैमित्तिक क्रिया इत्यादि का वर्णन है।	10	200/4800	9,00,00,000
14	त्रिलोक पूर्व	इसमें तीन लोक का स्वरूप बिन्दुसार, बीजगणित आदि का स्वरूप, तथा मोक्ष का स्वरूप और मोक्ष के कारणभूत क्रिया का स्वरूप इत्यादि का वर्णन है।	10	200/4800	12,50,00,000
	कुल		**195**	**3900/93600**	**95,50,00,005**
पाँच करोड़, पचास लाख, पाँच					

पाँचवाँ अधिकार चूलिका है। उसके पाँच भेद हैं।

क्र.	नाम	विषय	पद संख्या
1	जलगता चूलिका	जल का स्तम्भन करना, जल में चलना, अग्निगतता चूलिका में अग्नि स्तम्भन करना, अग्नि में प्रवेश करना, अग्नि का भक्षण करना इत्यादि के कारणभूत मन्त्र-तन्त्रादि की प्ररूपणा है।	2,09,89,200
2	स्थलगता चूलिका	मेरुपर्वत, भूमि इत्यादि में प्रवेश करना, शीघ्रगमन करना इत्यादि क्रिया के कारणरूप मन्त्र, तन्त्र तपश्चरणादि की प्ररूपणा है।	2,09,89,200
3	मायागता चूलिका	इसमें मायामयी इन्द्रजाल विक्रिया के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र तपश्चरणादि की प्ररूपणा है।	2,09,89,200
4	रूपगता चूलिका	इसमें सिंह, हाथी, घोड़ा, बैल, हिरण, इत्यादि अनेक प्रकार के रूप बना लेने के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र तपश्चरणादि की प्ररूपणा है तथा चित्राम काष्ठलेप आदि के लक्षण का वर्णन है।	2,09,89,200
5	आकाशगता चूलिका	इसमें आकाश में गमन आदि के कारणभूत मन्त्र, यन्त्र, तन्त्रादि की प्ररूपणा है।	2,09,89,200
		चूलिका के कुल पद	**10,49,46,000**

बारहवें दृष्टिवाद अङ्ग के प्रत्येक अधिकार के कुल पद की संख्या

1	परिकर्म	1,81,05,000
2	सूत्र	88,00,000
3	प्रथमानुयोग	5,000
4	पूर्वगत (14 पूर्व)	95,50,00,005
5	चूलिका	10,49,46,000
		108,68,56,005
एक सौ आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन हजार पाँच		

अङ्ग बाह्य सूत्र –

क्रम	**14 प्रकीर्णक**	**विषय**
1	सामायिक	नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावना+छह
2	चतुर्विंशतिस्तव	चौबीस भगवान की महिमा
3	वन्दना	एक तीर्थङ्कर के आश्रय से वन्दना स्तुति
4	प्रतिक्रमण	सात प्रकार का प्रतिक्रमण —दैवसिक, रात्रिक, ऐरियापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, उत्तमार्थ
5	वैनयिक	पाँच प्रकार का विनय — 1. लोकानुवृत्तिविनय, 2. अर्थनिमित्तक विनय, 3. कामतंत्रविनय, 4. भयविनय, 5. मोक्षविनय
6	कृतिकर्म	अरिहन्तादिक की वन्दना की क्रिया
7	दशवैकालिक	मुनि के आचार, आहार की शुद्धता
8	उत्तराध्ययन	परीषह–उपसर्ग सहन करने का विधान

क्रम	14 प्रकीर्णक	विषय
9	कल्पव्यवहार	मुनि के योग्य आचरण और अयोग्य सेवन का प्रायश्चित्त
10	कल्पाकल्प	मुनि के योग्य और अयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से वर्णन
11	महाकल्प	जिनकल्पी मुनि को प्रतिमायोग, त्रिकालयोग और स्थविरकल्पी मुनि की प्रवृत्ति
12	पुण्डरिक	चार प्रकार के देवों में उत्पन्न होने का कारण
13	महापुण्डरिक	इन्द्रादिक महा ऋद्धिधारी देव में उत्पन्न होने का कारण
14	निषिद्धिका / निसितिका	अनेक प्रकार की शुद्धता के निमित्त से प्रायश्चित्तों का प्ररूपण

इस प्रकार यह द्वादशाङ्ग का संक्षिप्त परिचय है। विस्तार से जानने हेतु जिनागम का अध्ययन अपेक्षित है। ●●

दिनाँक - 9-2-1999

(1) आज सारा विश्व काम-भोग की कथा में ही रचा-पचा हुआ है; धर्म की बात सुनने का अवसर ही नहीं है।

(2) व्यर्थ के धन्धों में मत पड़ो। किसी को धर्म नहीं चाहिए।

(3) स्वयं भगवान है। व्यर्थ में जिसके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है, उसमें पागल है।

(4) अपने को भूला, पर में अपनापना माना-इतना ही संसार है।

(5) जहाँ तक हो, किसी का भी साथ न करो।

— पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, मङ्गल दैनन्दिनी से साभार

रङ्गभूमि में : सात तत्त्व

सूत्रधार : सात तत्त्व की सच्ची समझ सम्यग्दर्शन का एक उपाय है। आओ हम भी सात तत्त्व को समझने के लिए एक रूपक देखते हैं। **रङ्गभूमि में : सात तत्त्व**

पात्र : जीव, अजीव (पुद्गल कर्मरूप), आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, और मोक्ष।

जीव : हे भगवान! इस पुद्गल कर्म ने तो मुझे परेशान कर दिया है, चार गतियों में भटका-भटका कर मुझे दु:खी कर डाला है।

अजीव (पुद्गल कर्म) : ऐ... ! मेरा नाम क्यों लिया ? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ? मैं तो हूँ पुद्गल कर्म; मैं मेरा काम करता हूँ, तू तेरा काम कर। तू मेरे प्रति मोह करके स्वयं ही अपनी भूल से चार गति में भटकता है और नाम मेरा लेता है ? मैं कहीं तुझे नहीं कहता कि जीव! आ, मेरे प्रति मोह कर।

जीव : अरे, परन्तु तू आता है, तब मुझे मोह होता है न ? तू मुझे छोड़ दे तो मुझे कहीं तुझ पर राग-द्वेष करने का शौक नहीं होगा।

अजीव (पुद्गल कर्म) : अरे, यह तो उल्टा चोर कोतवाल को डण्डे - ऐसी बात हुई। तूने पूर्व में जो राग-द्वेष किये थे, तब मैं तेरे निकट आया था और जितनी तीव्रता से तूने राग-द्वेष किये थे, उतने समय के लिए मैं तेरे साथ था परन्तु अब फल देने का समय आया, तब तू मुझसे कहता है कि तू मत आ... परन्तु यह तो तेरी भूल का परिणाम है। मेरा तो यह काम है; इसलिए मुझे तो फल देना ही पड़ेगा, इसलिए तुझे लगता है कि कर्म उदय में आये और तुमने दूसरे नये भाव किये परन्तु यदि तुम्हारे घर में कोई मेहमान आया हो और उस समय तुम अपने छोटे पुत्र के साथ खेलने लगो, मेहमान के सामने न देखो तो मेहमान चला जायेगा या नहीं ? इसी प्रकार मैं मेरा फल देना का काम करूँ, तब तुम ज्ञाता-दृष्टा रहो तो मैं चले जाने का विचारूँगा।

जीव : बस कर कर्म! एक तो तुझको मुझे छोड़ना नहीं और इस आस्रव को भी मेरे आगे-पीछे भ्रमाया करता है। ऐ आस्रव! तू क्यों मेरे आगे-पीछे घुमता है?

आस्रव : देखो, किसी के घर में विवाह हो और भावभीना आमन्त्रण मिले तो कहीं हम घर में थोड़े ही बैठे रहेंगे? जाना ही पड़ेगा न!

जीव : तू कहना क्या चाहता है?

आस्रव : सुन, जब तूने पूर्व में किये हुए भावकर्म के निमित्त से बँधे हुए द्रव्यकर्म का उदय आया, तब तेरा स्वभाव जो ज्ञाता-दृष्टारूप रहने का है, तूने उसे छोड़कर, इन कर्मों के प्रति मोह करके, नये भावकर्म किये, अर्थात् राग-द्वेष किये; इसलिए फल भोगता है।

जीव : मैं यह विकल्प करूँ, उसमें तुझे क्या?

आस्रव : यही तो बात है। विकल्प कर-करके तूने मुझे आने का भावभीना आमन्त्रण दिया है, वह भी सपरिवार, मित्रमण्डल सहित; इसलिए मैं इतने सब पुद्गलकर्मों को भी समूह के साथ लेकर आया और वह भी पूरे मानसहित हम आये हैं। जैसे कोई अपने को बहुत सम्मानपूर्वक आमन्त्रण दे तो हम दौड़-दौड़कर जाते हैं, वह भी बहुत सब जन मिलकर जाते हैं और रुकते भी लम्बे काल तक हैं। इसी प्रकार तूने जितनी तीव्रता से भावकर्म किये, उतने प्रमाण में, उतने समूह में और उतने लम्बे काल तक फल देनेवाले कर्मों को भी मैं साथ में लाया हूँ।

जीव : अरे बाप रे! अब वापस जाने का क्या लेगा?

आस्रव : हम कुछ थोड़े में मान जायें, ऐसे नहीं हैं। अभी तो वापस जाने के बदले तुझे बन्ध नामक जेल में डालने का मन होता है।

जीव : यह आस्रव... मुझे और जेल में?

बन्ध : हाँ, आस्रव ने ठीक कहा है। मैं हूँ बन्ध; तूने बड़े-बड़े अपराध किये तो तुझे जेल में तो डालना ही पड़ेगा न!

जीव : ऐ भाई! जेल कैसी और यह बात कैसी? मैंने तो कुछ अपराध किया ही नहीं।

बन्ध : ऐसा! तो सुन! एक तो पुराने पुद्गलकर्मों के उदय के समय ज्ञाता-दृष्टा नहीं रहा, यह पहला अपराध; दूसरा अपराध—शुभ अशुभ विकल्प किये और तीसरा मुख्य अपराध यह है कि इन भावकर्मों का कर्तापना किया, अर्थात् कर्मों के प्रति मोह करके उनमें जुड़ान किया।

'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञानता, सकट का भार ज्यों श्वान ताने' - ऐसी विपरीतता की है।

विकल्प मेरे और मैं उनका कर्ता।

कर्म मेरे और मैं उनका कर्ता-भोक्ता।

संयोग मेरे और मैं उनका कर्ता-भोक्ता।

—ऐसी अनादि की विपरीतता ही है और स्वयं ही अपने आत्मा के साथ ठगाई की है; अत: तुझे बन्ध नामक चार गति की जेल में न डालूँ तो क्या करूँ? तू ही कह।

जीव : हाँ, बात तो तेरी सत्य है। अनादि से इस चार गति की जेल में से कभी छूटा नहीं, अब तू मुझे छुड़ाने का कितना पैसा लेगा?

बन्ध : मुझे तो कुछ नहीं चाहिए। गुरु ने तुझे जो सही दिशा बतलायी है कि आत्मस्थिरता करके स्वरूप प्राप्ति कर, यदि वह तू करेगा तो मैं तुझे छोड़ दूँगा।

जीव : अच्छा; यदि यही मार्ग हो तो यह मनुष्यभव मिला है, इसे व्यर्थ नहीं जाने दूँगा; आत्मा में स्थिरता करके सम्यग्दर्शन कर ही लूँगा, अब तो तू मुझे छोड़ेगा न?

रे जानकर बन्धन-स्वभाव, स्वभाव जान जु आत्म का।
जो बन्ध में विरक्त होवे, कर्ममोक्ष करे अहा!॥

संवर : हाँ, मैं संवर! तू सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा तो मैं मैदान में आ जाऊँगा। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के मोहनीयकर्म का तो पहले ही चूरा कर डालूँगा और पश्चात् जैसे-जैसे आत्मा में स्थिरता बढ़ती जायेगी, वैसे-वैसे दूसरे कर्मों को भी आने का मार्ग बन्द कर दूँगा।

निर्जरा : मैं निर्जरा! सम्यग्दर्शन करने के पश्चात् जब तू सम्यक्चारित्र ग्रहण करेगा और मुनिपना अङ्गीकार करके उग्र तप करेगा, तब पहले के

सत्ता में पड़े हुए कर्मों को खिरा दूँगा। पहले चार घातिकर्मों का नम्बर है, और पश्चात् चार अघातिकर्मों का।

तूं स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्या, अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥

मोक्ष : मैं मोक्ष! तुझे केवलज्ञान होते ही भावमोक्ष होगा और फिर आयु पूर्ण होते ही चार गति की जेल में से सम्पूर्ण मुक्त हो जायेगा, यह देखना मेरा काम है।

जीव : अरे वाह! फिर तो जेल में से मुक्त होने के बाद तो मजा ही मजा!

मोक्ष : हाँ, ठीक है। फिर तो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य प्रगट होगा, तू अशरीरी सिद्ध भगवान हो जायेगा, जन्म-मरण, रोग-शोक, आधि-व्याधि सबसे मुक्त हो जायेगा।

दुख-सुख नहीं, पीड़ा जहाँ नहिं और बाधा है नहीं।
नहिं जनम है, नहिं मरण है, निर्वाण जानों रे वहीं॥
इन्द्रिय जहाँ नहिं, मोह नहिं, उपसर्ग, विस्मय भी नहीं।
निद्रा, क्षुधा, तृष्णा नहीं, निर्वाण जानो रे वहीं॥
रे कर्म नहिं नोकर्म, चिन्ता, आर्तरौद्र जहाँ नहीं।
है धर्म-शुक्ल सुध्यान नहिं, निर्वाण जानो रे वहीं॥

जीव : अरे वाह! संवर, निर्जरा, और मोक्ष यह मेरी तीन वीराङ्गना बहनें मुझे चार गति की जेल में से मुक्त कराने को आयी है, तो मैं किसलिए वापस गिरूँ? अब तो विकल्पों का कर्तापना नहीं, विकल्पों का भोक्तापना नहीं; मैं ज्ञाता-दृष्टा ही रहूँगा।

मैं परमात्मा हूँ—ऐसा निश्चित करूँगा।

मैं परमात्मा हूँ—ऐसा निर्णय करूँगा।

मैं परमात्मा हूँ—ऐसा अनुभव करूँगा।

और अनेक ज्ञानियों की तरह इसी भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करके ही रहूँगा।

अशरीरी सिद्ध भगवान आदर्श तुम्ही हो मेरे....

(संवादमाला से साभार)

स्वभावालम्बी ज्ञान की अगाध सामर्थ्य

मेरा आत्मा सर्वज्ञस्वभावी वस्तु है-ऐसा निर्णय करके, जिसने अन्तर्मुख ज्ञान में अपने आत्मा को स्वज्ञेय बनाया है, उस साधक जीव की राग से भिन्न पड़ी हुई ज्ञानपर्याय में कितनी अगाध सामर्थ्य है! कितनी अगाध शान्ति है! उसे पहचानने पर भी आत्मा में साधकभाव की धारा उल्लसित हो जाती है।

साधक की वर्तमान पर्याय में तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने की ताकत है। धर्मी को जैसे अपनी वर्तमान पर्याय की ताकत का विश्वास है, वैसे भविष्य की पर्याय की ताकत का भी विश्वास है... इसलिए भविष्य के लिये अभी धारणा कर लूँ—ऐसा, धारणा पर उसका जोर नहीं जाता। भविष्य में मेरी जो पर्याय होगी, तब वह पर्याय अपने उस समय के विकास के बल से भूत-भविष्य को जान ही लेगी; इसलिए भविष्य की पर्याय के लिये अभी धारणा कर लूँ या बाहर का क्षयोपशम बढ़ा लूँ—ऐसा धर्मी का लक्ष्य नहीं है; उस-उस समय की भविष्य की पर्याय, मेरे अतीन्द्रियस्वभाव के अवलम्बन के बल से जानने का कार्य करेगी।

अहो! आत्मा की अनुभूति में ज्ञान एकाग्र हुआ, वहाँ धर्मी को दूसरा कुछ जानने की आकुलता नहीं है। जहाँ ज्ञायकस्वभाव सम्पूर्णत: अनुभूति में साक्षात् वर्तता है, वहाँ थोड़े-थोड़ परज्ञेयों को जानने की आकुलता कौन करे? यह बात प्रवचनसार की 33 वीं गाथा में की है। 'विशेष आकांक्षा के क्षोभ से बस होओ; स्वरूप निश्चल ही रहते हैं।'

जो ज्ञान, स्वभाव को अवलम्बन करके काम करता है, उसकी महिमा के समक्ष शास्त्र के अवलम्बनभूत धारणा की महिमा नहीं रहती। जिसे दूसरे जानपने में महिमा भासित होती है, वह जीव, निजस्वभाव को जानने की ओर का जोर कहाँ से लायेगा? उसे महिमा तो बाहर के जानपने में वर्तती है। भाई! वर्तमान ज्ञान, अन्दर ज्ञानस्वभाव में उतर जाये, उसकी

वास्तविक कीमत है; उस पर्याय में अनन्त चमत्कारिक ताकत है... वह राग से सर्वथा भिन्न पड़कर, चैतन्य के अनन्त गुण की गुफा में घुस गयी है। वह पर्याय वर्तमान अपनी अगाध ताकत को जानती है, तथा भविष्य की उस-उस पर्याय में, स्वभाव के अवलम्बन से जो अगाध ताकत है, उसका भी विश्वास अभी उसे आ गया है। भले अमुक क्षेत्र में और अमुक समय में केवलज्ञानादि होंगे—ऐसा पृथक् पाड़कर वह न जान सके परन्तु स्वभाव के अवलम्बन से उसे प्रतीति हुई है कि जैसे अभी मेरी स्वसन्मुख पर्याय, राग से भिन्न रहकर अतीन्द्रियस्वभाव के अवलम्बन से महान आनन्दमय काम कर रही है; वैसे भविष्य में भी मेरी पर्यायें मेरे अतीन्द्रियस्वभाव को ही अवलम्बन करके अचिन्त्य-चमत्कारिक ताकत से केवलज्ञानादि कार्य करेंगी; ऐसे स्वभाव का अवलम्बन मुझे वर्तता ही है, फिर 'अधिक जानूँ'—ऐसी आकुलता का क्या काम है ? सर्व को जानने के सामर्थ्यवाला जो सर्वज्ञस्वभाव, उसका ही अवलम्बन लेकर पर्याय, ज्ञानरूप परिणमित हो रही है, वहाँ लोकालोक को जानने की आकुलता नहीं रहती; स्वसन्मुखी ज्ञान में परम धीरज है, आनन्द की लीला-लहर है।

बहुत अङ्ग-पूर्व जान लूँ तो मुझे आनन्द अधिक हो—ऐसा विशेष जानने पर ज्ञानी का जोर नहीं है परन्तु मेरा जो ज्ञानस्वभाव है, उसमें लीन होऊँ, उतनी मुझे शान्ति है। अहो! ज्ञान, वह कोई आकुलता करे ? नहीं; ज्ञान तो निर्विकल्प होकर अन्दर ढले।

अन्तर में स्वसंवेदनज्ञान खिला, वहाँ स्वयं को उसका वेदन हुआ। पश्चात् उसे दूसरे जाने या न जाने, उसकी ज्ञानी को अपेक्षा नहीं है। जैसे सुगन्धी-फूल खिलता है, उसकी सुगन्ध दूसरा कोई ले या न ले, उसकी अपेक्षा फूल को नहीं है; वह तो स्वयं अपने में ही सुगन्ध से खिला है; इसी प्रकार धर्मात्मा को अपना आनन्दमय स्वसंवेदन हुआ है, वह कहीं दूसरों को दिखलाने के लिए नहीं है। दूसरे जानें तो अपने को शान्ति हो—ऐसा कुछ धर्मी को नहीं है। वह तो अन्दर अकेला-अकेला अपने एकत्व में आनन्दरूप से परिणम ही रहा है।

बौद्ध, आत्मा को सर्वथा क्षणिक (वर्तमान पर्याय जितना ही) माननेवाले क्षणिकवादी कहलाते हैं परन्तु वास्तव में तो, द्रव्यस्वभाव की सामर्थ्य को जाने बिना उसकी एक पर्याय का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता क्योंकि एक शुद्धपर्याय में भी इतनी ताकत है कि अनादि-अनन्त द्रव्य को, उसके अनन्त गुणों को तथा तीन काल की पर्यायों को जान ले। अब एक पर्याय की इतनी ताकत का स्वीकार करने जाये, उसमें तो त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय का भी स्वीकार आ ही जाता है। उसके बिना शुद्धपर्याय की ताकत का भी स्वीकार नहीं होता।

अरे, ज्ञानी की ज्ञानपर्याय में भी कितनी अगाध ताकत है! उसका जगत को पता नहीं है। पर्याय की अगाध ताकत का निर्णय करने जाये तो वहाँ भी ज्ञान, राग से भिन्न पड़कर अन्दर स्वभाव में घुस जाता है, पर्याय, पर्याय में ज्ञानी का ज्ञान, राग से भिन्न भी कार्य करता है।

आहा! तीन काल को वर्तमान में जान ले-ऐसी ज्ञानपर्याय की ताकत जिसके विश्वास में आ गयी, उसे बाहर का जानपना बढ़ाने की आकुलता नहीं रहती; उसकी ज्ञानपर्याय, राग से पृथक् पड़कर, अखण्ड ज्ञानस्वभाव के आश्रय से काम करती है और इसी प्रकार भविष्य में भी उस-उस काल की पर्याय में स्वभाव के आश्रय से तीन काल को जानने की ताकत खिलेगी; उसका विश्वास अभी स्वसन्मुख हुई वर्तमान पर्याय में आ गया है; इसलिए अत्यन्त निराकुलता हो गयी है।

त्रिकाली द्रव्य-गुण तथा तीन काल की पर्यायें—इन सब ज्ञेयों को स्वीकार किये बिना, उन ज्ञेयों को जानने के सामर्थ्यवाली ज्ञानपर्याय का भी स्वीकार नहीं हो सकता; इसलिए ज्ञान की एक शुद्धपर्याय का भी यदि वास्तविक स्वीकार करने जाये तो उस पर्याय के ज्ञेयरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय का भी स्वीकार हो जाता है। द्रव्य के अस्वीकारपूर्वक अनित्य पर्याय का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता है।

अरे भाई! तेरी एक पर्याय की पूरी ताकत का स्वीकार कर तो उसके अपार सामर्थ्य में तीन काल की समस्त पर्यायें और द्रव्य-गुण भेदरूप से

समाहित हैं,–उनका स्वीकार करनेवाला ज्ञान, राग से भिन्न पड़कर काम करता है; पश्चात् परसन्मुखी ज्ञान के जानपने को बढ़ाने की महिमा उसे नहीं रहती। उसका ज्ञान तो स्वसन्मुख एकाग्र होकर अपना काम करता है, वह आनन्द का वेदन करते-करते मोक्ष को साधता है।

एक वर्तमान पर्याय, तीन काल को जाने, इससे कहीं उसे उपाधि नहीं लग जाती या उसमें अशुद्धता नहीं हो जाती तथा आत्मा त्रिकाल टिके, इससे कहीं उसे काल की उपाधि या अशुद्धता नहीं होती; नित्यपना तो सहज स्वभाव है। जैसे अनित्यपना है, वैसे नित्यपना भी है; ये दोनों स्वभाववाला आत्मा है।

वर्तमान में जो आत्मा है, वह भूतकाल में था और भविष्यकाल में रहेगा—ऐसा वस्तुस्वरूप है। तीनों काल को स्पर्शनेवाले वस्तु है, उसे कोई त्रिकाली टिकने में बोझा या अशुद्धता नहीं है। ऐसे द्रव्यस्वभाव के स्वीकारपूर्वक उसमें एकाग्र होकर, अतीन्द्रियभावरूप से परिणमित पर्याय, राग से भिन्न कार्य करती है; और उसी स्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान होता है, तब वह पर्याय एक-एक समय को भिन्न पाड़कर पकड़ सकती है। एक समय को पकड़ने का काम छद्मस्थ का स्थूल उपयोग नहीं कर सकता; उसका उपयोग असंख्य समय में कार्य करे ऐसा स्थूल होता है। जैसे बौद्ध भाव से आत्मा को सर्वथा क्षणिक एक समय का ही मानते हैं परन्तु उनका ज्ञान कहीं एक-एक समय की पर्याय को पकड़ नहीं सकता, वह भी असंख्य समय की स्थूल पर्याय को ही जान सकता है।

द्रव्य क्या? पर्याय क्या? पर्याय की ताकत कितनी?—इस एक भी बात का निर्णय अज्ञानी को नहीं होता, वह चाहे जिस प्रकार अन्धाधुन्ध अन्धे की तरह मान ले। अरे! द्रव्य-गुण-पर्याय में से एक भी वस्तु का सच्चा निर्णय करने जाये तो उस ज्ञान में समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय का, तीन काल-तीन लोक का निर्णय समाहित हो जाये और वह ज्ञान, राग से भिन्न पड़कर अन्दर के स्वभाव की ओर ढल जाये; उसमें तो अनन्त गुणों के सुख का रस भरा है। आहा! धर्मी की एक ज्ञानपर्याय में कैसी अचिन्त्य ताकत

भरी है और उसमें कैसा अद्‌भुत आत्मवैभव प्रगट हुआ है! इसका जगत को पता नहीं है। जगत को पता पड़े या न पड़े परन्तु वे ज्ञानी स्वयं अपने में तो अपने चमत्कारिक वैभव को अनुभव कर ही रहे हैं।

हे भाई! तेरी वर्तमान पर्याय में आनन्द तो है नहीं; और यदि तू इस पर्याय जितना ही क्षणिक आत्मा मानेगा तो आनन्द कहाँ से लायेगा? आत्मा को सर्वथा क्षणिक मानने पर तुझे कभी आनन्द नहीं होगा। नित्य स्वभाव जो आनन्द से सदा भरपूर है, उसके सन्मुख होकर परिणमने पर, अनित्य ऐसी पर्याय में भी तुझे आनन्दरूपी अमृत का प्रपात बहेगा। नित्य -अनित्यरूप सम्पूर्ण वस्तु के स्वीकार बिना, आनन्द का अनुभव नहीं हो सकेगा। नित्य अंश और अनित्य अंश, दोनों स्वभाव की एकतारूप अखण्ड वस्तुस्वभाव है, उस अनेकान्तमय वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करनेवाला जैनशासन जयवन्त है। *[सम्यग्दर्शन (गुजराती) भाग-4, पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन]*

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन द्वारा लिखित
निम्न ग्रन्थों का प्रकाशन शीघ्र

अलीगढ़ : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त, स्वर्गीय पण्डित कैलाशचन्द्र जैन की स्मृति में स्थापित **पण्डित कैलाशचन्द्र जैन फाउण्डेशन** के अन्तर्गत पण्डित कैलाशचन्द्र जैन ग्रन्थमाला के निम्न प्रकाशनों का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है। इच्छुक आत्मार्थी, भाई-बहिन एवं मण्डल अपने यहाँ अपेक्षित प्रतियों के सम्बन्ध में निम्न पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।

(1) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-1; (2) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-2 ; (3) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-3 ; (4) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-4 ; (5) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-5; (6) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-6।

(7) मङ्गल दैनन्दिनी; (8) मङ्गल पत्राञ्जलि; (9) मङ्गल देशना; (10) मङ्गल सम्बोधन।

सम्पर्कसूत्र : पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

—तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-204216

—'विमलांचल', हरिनगर, गोपालपुरी, आगरा रोड, अलीगढ़-202001

पण्डितजी की डायरी से

दिनाँक 20-1-94

(1) मृत्यु तो एक बार होनी ही है; इसलिये देह का लक्ष्य छोड़कर, अमृतस्वरूप निज आत्मा पर दृष्टि कर।

(2) भाई! शरीर तुम्हारा कहा नहीं मानता तो शरीर के प्रति प्रेम क्यों करते हो?

(3) शरीर, अचेतन-पुद्गलों का पिण्ड है; मैं इसका कर्ता या आधार नहीं, मुझे इसका पक्षपात नहीं; इसका जैसा होना होवे, होओ — मैं तो अपने में मध्यस्थ हूँ।

(4) मरण समय जिन्दगी के अभ्यास का नमूना आता है। यदि उस समय भेदज्ञानपूर्वक-आत्मा की भावनापूर्वक, शान्ति से देह छोड़े तो होशियारपना है।

(5) शरीर में कैसा भी हो, उसके ऊपर दृष्टि न देकर, निज ज्ञानानन्द-स्वरूप का लक्ष्य करना। भेदज्ञान की भावना रखना, स्वसत्तावालम्बी उपयोग आत्मा का स्वरूप है — उसका विचार कर (1) मैं तो ज्ञायक हूँ — ऐसी श्रद्धा से ज्ञानी व्रजपात होने पर भी डिगता नहीं और निज स्वरूप की श्रद्धा छोड़ता नहीं। शरीर में कुछ भी होवे, परन्तु आत्मा की भावना रखना। **जय पूज्य गुरुदेव!**

तू जीवतत्त्व है, तेरा विश्व के अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, जो एक बार यथार्थ निर्णय करेगा, मुक्तिरूपी मोक्षलक्ष्मी का स्वामी बन जावेगा।

— पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

करणानुयोग की कक्षाओं का विशेष आयोजन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ सञ्चालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों को करणानुयोग विषयक ज्ञान प्रदान करने के उद्देश्य से दिनांक 08 अप्रैल से 30 अप्रैल 2013 तक बाल ब्रह्मचारी यशपाल जैन / आदरणीय अन्नाजी, जयपुर द्वारा विशेष कक्षाओं का आयोजन किया गया। जिसमें गुणस्थान विवेचन; जीव जीता कर्म हारा; जिनधर्म प्रवेशिका इत्यादि के आधार पर कक्षाओं का लाभ प्राप्त हुआ। आपके द्वारा सरलता से समझाये गये करणानुयोग के इन गूढ़ विषयों को मङ्गलार्थियों ने सहजरूप से ग्रहण किया। अन्त में परीक्षा आयोजित कर शत-प्रतिशत परीक्षा परिणाम सुनाया गया।

शासननायक भगवान महावीर जयन्ती पर विशेष आयोजन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : वर्तमान चौबीसी के अन्तिम तीर्थङ्कर शासननायक भगवान महावीरस्वामी की जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में विशेष कार्यक्रम आयोजित किये गये। सर्व प्रथम प्रात: काल प्रभातफेरी का आयोजन; पश्चात् महावीर जिनमन्दिर में विशेष जिनेन्द्र पूजन का आयोजन, तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन एवं पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन द्वारा भगवान महावीर के जीवन-दर्शन एवं सिद्धान्तों पर चर्चा की गयी। सायंकालीन सत्र में श्री महावीरस्वामी जिनमन्दिर में जन्म कल्याणक भक्ति; तत्पश्चात् पण्डित संजय जैन शास्त्री द्वारा भगवान महावीर के बत्तीस भवों की कथात्मक प्रस्तुति का आयोजन किया गया। दूसरे दिन भगवान महावीर के जीवन एवं सिद्धान्तों पर मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया।

इसके अतिरिक्त सासनी, अलीगढ़, हाथरस और मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में भी महावीर जयन्ती पर अनेक कार्यक्रम आयोजित किये गये। जिसमें तीर्थधाम मङ्गलायतन के विद्वानों एवं मङ्गलार्थी छात्रों की अहम भूमिका रही।

गुरुदेव का सम्प्रदाय परिवर्तन दिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भगवान महावीर जयन्ती के पावन दिन के अवसर पर ही महावीर शासन के उद्धार का एक प्रेरक प्रसङ्ग बना था, वह प्रसङ्ग था पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा सम्प्रदाय परिवर्तन। आज से लगभग 78 वर्ष पूर्व

सौराष्ट्र के छोटे से गाँव सोनगढ़ में स्थित 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक मकान में भगवान पार्श्वनाथ के चित्रपट के समक्ष सम्प्रदाय परिवर्तन कर दिगम्बर जैन धर्म अङ्गीकार किया था। इस प्रसङ्ग की जानकारी मङ्गलार्थी छात्रों को प्रदान की गयी। इस प्रकार मुमुक्षु समाज के लिये महावीर जयन्ती के साथ-साथ गुरुदेव का सम्प्रदाय परिवर्तन दिन भी एक महोत्सव से कम नहीं है।

दिल्ली पब्लिक स्कूल एवं मङ्गलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़ में महावीर जयन्ती महोत्सव सम्पन्न

अलीगढ़ : तीर्थधाम मङ्गलायतन के निकट दिल्ली पब्लिक स्कूल, अलीगढ़ में महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में तीर्थधाम मङ्गलायतन के निदेशक पण्डित अशोककुमार लुहाड़िया को विशेष अतिथि के रूप आमन्त्रित किया गया। अपने उद्‌बोधन में उन्होंने कहा कि भगवान महावीर किसी जाति विशेष के नहीं होकर जन-जन के हैं क्योंकि उनके द्वारा बतलाये गये सिद्धान्त सबके लिए समान हितकारी हैं। प्रधानाचार्या श्रीमती शुभा नारायण ने भगवान महावीर के पाँच नामों की सार्थकता पर अपने विचार अभिव्यक्त किये। कार्यक्रम में सभी अध्यापकों एवं छात्र समुदाय की उल्लेखनीय उपस्थिति रही।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय : महावीर जयन्ती के अवसर पर विज्ञान, प्रबन्धन एवं महावीर सिद्धान्त विषय पर एक वर्कशाप आयोजित की गयी। जिसमें विश्वविद्यालय के बोर्ड ऑफ गवर्नर के चेयरमैन श्री पवन जैन ने जमीकन्द, रात्रि भोजन इत्यादि के दुष्प्रभावों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक पद्धति से प्रभावी व्यक्तव्य दिया। कुलपति डॉ. एस.सी. जैन; दर्शन विज्ञान विभाग के निदेशक डॉ. जयन्तीलाल जैन, तथा अनेक छात्रों ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

यहाँ निवास कर रहे छात्रों द्वारा बेसवाँ गाँव में शोभायात्रा का आयोजन किया गया तथा पण्डित संजय जैन शास्त्री ने भगवान महावीर के सम्बन्ध में अपने उद्‌बोधन में उनके जीवन और दर्शन की प्रस्तुति प्रदान की। इसी अवसर पर विश्वविद्यालय में स्थित जिनमन्दिर में जिनेन्द्र भक्ति का विशेष कार्यक्रम भी आयोजित किया गया। जिसमें अनेकों छात्रों ने प्रेरणा प्राप्त की।

ग्रीष्मकालीन अवकाश के अवसर पर अपने नगर अथवा गाँव में बाल /युवा / प्रौढ़ संस्कार शिविर का आयोजन कर, वीतरागी तत्त्वज्ञान के अध्ययन-मनन का वातावरण बनायें।